विज्ञान

समाज ....

और शैक्षिक नवाचार

प्रो. यशपाल

और समाज का रिश्ता बना रहे और समाज पाठ्यक्रम में संबद्धता बनी रहे तो समाज के सवाल स्कूलों में आएंगे उनके जवाब भी मिलेंगे और कुछ सृजन भी होगा।

ये तो आपको पता चल गया है कि मेरी दोस्ती, मेरा साथ इस प्रोग्राम के साथ शुरू से रहा है। मुझे 1983-84 में बुलाया था। तब आने से पहले मैं अपने पुराने कागज़ातों को देख रहा था तो मुझे एक कागज़ मिला जो मैंने सन् 1972 में लिखा था – 'सम अटैम्पट टू चेंज द पैटर्न ऑफ एजुकेशन इन इंडिया।' वो लिखा था जब होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम शुरू हुआ था और 16 स्कूलों के शिक्षकों के साथ पहली ट्रेनिंग हुई थी।

बारह साल गुज़र गए, हम कितना आगे बढ़े हैं? अगर इस तरह से सोचेंगे तो आपको लगेगा कि नहीं भाई, कोई फायदा नहीं है। पर दूसरी जो परम्परागत शिक्षा चल रही है, वह तो बरसों से चल रही है तो उससे भारत बदल गया क्या? कोई भी ऐसी चीज़ लीजिए। आप इस प्रकार से देखिए कि यहां पर जो काम शुरू हुआ वह बड़ा है, काफी बड़ा है। अगर कोई कमियां हैं तो वे इस प्रोग्राम की खामियां नहीं हैं, वो इस समाज की

खामियां हैं जो यह कार्यक्रम दिखाता है। खतरे तरह-तरह के हैं देश के पास, मैं थोड़ा-सा सुन रहा था कि विज्ञान तो एक ही होता है, तो विज्ञान तो ऐसे पढ़ाया जाए कि हावर्ड की किताबें ले लो या फिर इंग्लैण्ड वालों की किताबें ले लो; उनको यहां हिन्दी में अनुदित कर बांट दो, क्या ज़रूरत है मेहनत करने की। विज्ञान तो विज्ञान है, मैग्नेटिज़्म तो मैग्नेटिज़्म है, साउण्ड साउण्ड है, इलेक्ट्रीसिटी इलेक्ट्रीसिटी है। परन्तु मुझे यह समझ में नहीं आता कि अगर अमेरिका ने किताबें बनाई हैं तो इंग्लैण्ड को क्या ज़रूरत लगती है कि वह अपनी किताबें बनाए, वो भी वहां से ले ले। जापानियों को क्या ज़रूरत पड़ती है, फ्रांसीसियों को क्या ज़रूरत पड़ती है। कोई बात तो होगी न!

ज़िंदगी से जुड़ा ज्ञान

देखिए वह ज्ञान जिसका किसी और ज्ञान से लेन-देन का रिश्ता बिल्कुल नहीं है, जिसका आपकी ज़िन्दगी से कोई रिश्ता नहीं है, वह आपके लिए खतरनाक है, या बिल्कुल फालतू है, किसी काम का नहीं है। उसमें उपजाऊपन नहीं होता। अब आप कहेंगे कैसी बात कर रहे हो, इसका कोई उदाहरण दो। मुझे ऐसा लगता है कि 30 साल पहले से हमारे स्कूलों, कॉलेजों, यूनिवर्सिटियों में पढ़ाए जाने वाले विज्ञान का हमारे आसपास के जीवन से ताल्लुक नहीं रहा है या बहुत कम ताल्लुक रहा है, इसलिए वह पनप नहीं पाया है। लोग बताते हैं कि हमारे आई. आई. टी. से पढ़े हुए लोग बाहर जाते हैं तो लाखों-करोड़ों रुपए कमाते हैं। आप कहते हैं कितने अच्छे लोग हैं, हम उन्हें मौका नहीं देते। आई. आई. टी. वाले लोग वही किताबें पढ़ते हैं, उसी तरह से पढ़ते हैं जो बाहर चल रही होती हैं। जब वे बाहर जाते हैं तो आसपास जो इण्डस्ट्रीज़ चल रही हैं उसमें एकदम से फिट हो जाते हैं; ये बाहर के लिए तैयार किए गए लोग होते हैं और इसलिए बाहर ज़्यादा फिट होते हैं।

उनसे यहां की मुश्किलों को समझने को कहें तो वे कहते हैं – ना, पहले आप समाज को बदलिए, तब हम यहां काम करेंगे। अरे, कैसी पढ़ाई है जो आप कहते हैं कि समाज को बदलो तब हम काम करेंगे। समाज को बदलना किसका काम है, कौन बदलेगा समाज को? यदि शिक्षित लोग, पढ़े-लिखे लोग कोशिश नहीं करेंगे समाज को बदलने की? यदि अपनी ज़मीन के साथ रिश्ता नहीं बनाएंगे तो जितना ज्ञान जितना विज्ञान आप देंगे वह कागज़ी रह जाएगा, पनपेगा नहीं, उभरेगा नहीं। लोग बड़ों की चाकरी करते रहेंगे। हां, इधर-उधर थोड़ी-सी चीज़ें निकल सकती हैं।

मैं समझता हूं होशंगाबाद विज्ञान

इस तरह पढ़ाने का एक बड़ा भारी प्रयास है। अभी तक सफल हुआ, नहीं हुआ? आप कह सकते हैं कि इतने सौ स्कूलों में चल रहा है तो एकदम असफल तो नहीं होगा। नापने के तरीके तरह-तरह के हो सकते हैं। एक बार मैं एक पब्लिक स्कूल के कॉनवोकेशन में गया था – प्राइज़ ड्रिस्ट्रीब्यूशन भी था। तो मैंने कहा, "भई, शिक्षा का क्या करें। तुम्हारे स्कूल में ही कुछ करके देखो।" उन्होंने कहा, "हमारे स्कूल में क्या गड़बड़ है?" मैंने कहा कि पढ़ाई ठीक से नहीं होती। तो वो जनाब कहते हैं, "कैसे ठीक नहीं होती? इतने फर्स्ट क्लास आते हैं, इतने डिस्टिंक्शन आते हैं . . .।"

अब आप मापने के तरीके खुद बनाएंगे और लोग उसी तरह से तैयार करेंगे तो फर्स्टक्लास, डिस्टिंक्शन तो आएंगे ही। कुछ लोग तो ऐसे होते हैं उनको पढ़ाओ, न पढ़ाओ, गड़बड़ करो, फर्स्टक्लास तो आ ही जाती है उनकी। किसी भी नवाचार के बारे में अक्सर सवाल उठता है कि आई. ए. एस. में कितने आए, आई. आई. टी. में कितने आए? आई. आई. टी. वालों से मैं कहता हूं आपने जितना फायदा किया है, उससे कहीं ज़्यादा नुकसान किया है। वह इस तरह कि आप आई. आई. टी. एण्टरेंस बनाते हैं, उसका असर यहां पहली, दूसरी, तीसरी श्रेणी पर पड़ता है। यहां पर सब उसी तरह के रट्टेबाज़ लोग तैयार करना शुरू कर देते हैं, उसी तरह के बनने के लिए कोचिंग क्लासेस चलती हैं।

चंडीगढ़ में कहते हैं, यहां तो 80 हज़ार रुपए लगते हैं एक साल की कोचिंग के लिए। लोगों ने बच्चों पर इतना भार डाल दिया है कि उनके दिमाग कुंद हो जाते हैं। आई. आई. टी. वगैरह जैसी जगह में, जो बच्चा पास होकर प्रवेश पा जाता है, वो शुरू में खुश होता है। और जो वहां नहीं पहुंच पाता, वो खत्म हो जाता है। पर मैं ये मानता हूं कि जितना दबाव होता है, जिस प्रकार से तैयारी करनी पड़ती है उसकी वजह से – जो पास भी हो जाता है वो उतना नहीं रहता जो उससे पहले था। उस प्रक्रिया से लोगों के सोचने के तरीके पर स्थाई रूप से क्षति पहुंचती है।

कुछ नए की भूमिका

अगर ये नहीं बदलेगा तो बाकी चीज़ें नहीं बदल सकती। तो एक तरह से हस्तक्षेप है, गहरा हस्तक्षेप है ये – कुछ नए तरीके से करने का, समझने का, कराने का। मैं यहां बच्चों से बात कर रहा था। किसी पाठ्यक्रम में ये महत्वपूर्ण नहीं कि कितने सारे नाम आ गए और कितने सारे आपने पढ़ लिए, पर यह कि आपको गहरी समझ कहां-कहां से आई। तो मैंने बच्चों से पूछा कि समझ क्या होती है? मनुष्य

बना समझने के लिए है। अगर ऐसी चीज़ डाल दी जाए जो समझ में न आए, जिसमें आनंद न आए – तो वो काम की चीज़ नहीं रहती। पढ़ने-पढ़ाने में ऐसी चीज़ें होना चाहिए जिनमें थोड़ा-थोड़ा आनंद आए, क्योंकि यह भी सही है कि हर चीज़ पूरी तो नहीं समझी जा सकती।

ओज़ोन की परत

एक उदाहरण लेकर देखते हैं। जब भी बच्चों से पूछता हूं कि ओज़ोन क्या होती है, उसके बारे में कुछ बताओ, ओज़ोन ऊपर ही क्यों रहती है; तो अक्सर रटा-रटाया जवाब सुनने को मिलता है।

जब बात चल रही थी तो मैंने दिमाग में ऐसी तस्वीर बनाई – ड्रामा करने वाली। ऑक्सीजन तो हर कहीं है। काफी सारी अल्ट्रावॉयलेट आई, कम ऊर्जा की। उसमें ज़्यादा ऊर्जा नहीं थी, वो आगे बढ़ती गई, कुछ नहीं हुआ; वो चलती गई, चलती गई, ज़मीन पर आई और हमारी बरबादी की उसने। ऑक्सीजन का कुछ नहीं हुआ क्योंकि ऑक्सीजन के दोनों परमाणुओं ने एक दूसरे को बहुत ज़ोरों से पकड़ा हुआ था। अब थोड़ी ज़्यादा ऊर्जा वाली अल्ट्रावॉयलेट आई, सब तरह की आती रहती हैं, तो उसने ऑक्सीजन के दोनों परमाणुओं को अलग कर दिया। तो ऑक्सीजन अणु टूट गया। तो देखिए यह रहा बेचारा टूटा अणु। एक और ऑक्सीजन अणु घूमता-घूमता इसके पास आया, उसने इसकी अंगुली पकड़ ली तो ये तीन परमाणुओं वाली ओज़ोन बन गई। अब इन तीन एटम में इतना पक्का जोड़ नहीं है।

अब जो कम ऊर्जा वाली अल्ट्रावॉयलेट आई, जो पहले कुछ नहीं कर सकती थी, नीचे तक पहुंच जाती थी – वो ओज़ोन से टकराई और जो तीसरा एटम पकड़े था उसे अलग कर दिया। इसे अलग करने में अल्ट्रावॉयलेट खुद मर गई, एबज़ॉर्ब हो गई, सोख ली गई। किसी को तोड़ा तो खुद तो एबज़ॉर्ब होना ही था। इसको कहते हैं एबज़ॉर्ब्शन ऑफ अल्ट्रावॉयलेट, वो करती है ओज़ोन।

ओज़ोन के टूटने के और भी तरीके हो सकते हैं। क्लोरीन का एटम घूमता-घूमता आया कि अकेला हूं, अकेला हूं। ऑक्सीजन का भी एटम आया – वह भी कहता रहा अकेला हूं, अकेला हूं। दोनों ने हाथ पकड़ लिया; ये क्लोरीन ऑक्साइड बन गई। पर ऑक्सीजन को जुड़ने में इतना मज़ा नहीं आ रहा; ऑक्सीजन को और खाली एटम मिले तो मज़े का अणु बने ना। क्लोरीन ऑक्साइड घूमते-घूमते कभी-न-कभी ओज़ोन के पास पहुंच जाती है। ओज़ोन् में तो ऑक्सीजन परमाणु हल्के से उंगुली पकड़े हैं, क्लोरीन ऑक्साइड

ओज़ोन का बनना और टूटना

ज़्यादा ऊर्जा वाली अल्ट्रावॉयलेट किरणों ने ऑक्सीजन के दोनों परमाणुओं को अलग कर दिया, ऐसा करने में वो खुद खत्म हो गई यानी सोख ली गई।

अलग हुए ऑक्सीजन परमाणु के साथ एक और ऑक्सीजन अणु आ जुड़ा, जिससे तीन परमाणुओं वाली ऑक्सीजन यानी ओज़ोन बन गई।

कम ऊर्जा वाली अल्ट्रावॉयलेट किरणें जो अब तक धरती तक पहुंच रही थीं, वे जब ओज़ोन से टकराईं तो ओज़ोन का तीसरा ऑक्सीजन परमाणु फिर से अलग हो गया; और कम ऊर्जा वाली ये अल्ट्रावॉयलेट किरणें ओज़ोन को तोड़ने में खत्म हो गईं।

ओज़ोन नष्ट होने का एक और तरीका यह भी है:

वातावरण में घूम रहे क्लोरीन के परमाणु ने ऑक्सीजन के परमाणु के साथ मिलकर क्लोरीन ऑक्साइड बना ली। परन्तु ऑक्सीजन को क्लोरीन से जुड़ने में इतना मज़ा नहीं आ रहा।

क्लोरीन ऑक्साइड का अणु घूमते-घूमते ओज़ोन के पास पहुंचा। क्लोरीन ऑक्साइड की ऑक्मीजन का परमाणु, ओज़ोन के ऑक्सीजन के तीसरे परमाणु के साथ हो लिया, जिससे ऑक्सीजन का एक नया अणु बन गया। परन्तु इस प्रक्रिया ने ओज़ोन को तोड़ दिया। क्लोरीन का परमाणु फिर से क्लोरीन ऑक्साइड बनाकर ओज़ोन के किसी और अणु को तोड़ेगा। क्लोरीन का एक परमाणु लाखों बार ऐसा कर सकता है, और ओज़ोन को नष्ट करता रह सकता है।

की ऑक्सीजन का एटम ओज़ोन के एटम को कहता है, "यार, मेरे पास आ जा।" इस तरह ऑक्सीजन के दो एटम मिले तो ऑक्सीजन का एक अणु बन गया, परन्तु इस प्रक्रिया में ओज़ोन को तोड़ दिया। इस तरह ओज़ोन टूट गई परन्तु अब वो क्लोरीन एटम फिर से स्वतंत्र रूप से घूम रहा है। फिर से एक ऑक्सीजन एटम घूमता-घूमता आया, उसने क्लोरीन से जुड़कर एक बार फिर ओज़ोन को नष्ट किया। दूसरी बार किया, तीसरी बार किया, इसी तरह एक लाख बार ओज़ोन को नष्ट कर दिया। तो क्लोरीन इसी वजह से हानिकारक है।

पर आपने देखा कि ओज़ोन के लिए ऑक्सीजन चाहिए। ऊंचाई पर अल्ट्रावॉयलेट आ रही है, ज़्यादा ऊर्जा वाली अल्ट्रावॉयलेट ऑक्सीजन अणु को तोड़कर परमाणु बनाए, वो परमाणु जाकर दूसरे अणु से मिले जिससे ओज़ोन बने; फिर यह ओज़ोन कम ऊर्जा वाली अल्ट्रावॉयलेट को एबज़ॉर्ब कर सकती है जो हमारे लिए हानिकारक होती है। अब पता चला कि ओज़ोन ऊपर क्यों रहती है – क्योंकि ओज़ोन पड़ी नहीं रहती, नई ओज़ोन पैदा होती है और मरती रहती है। केवल तीन मिनिट ज़िंदगी है ओज़ोन की, ओज़ोन का अणु तीन मिनट में मर जाता है, पर एक नया बन जाता है। तो अलग किस्म का ड्रामा वहां चल रहा है जिसकी वजह से कम ऊर्जा वाली अल्ट्रावॉयलेट हम तक पहुंच नहीं पाती; लेकिन हम क्लोरीन वगैरह ऊपर भेजकर ओज़ोन का नुकसान कर सकते हैं। मुझे लगता है कि बिल्कुल अपनी तरह से समझने का मसला है, कोई समीकरण नहीं है इसमें। इससे प्रक्रिया तो समझ में आ जाएगी, इतना ही नहीं इसमें इकोलॉजी है, ऑक्सीजन की क्या भूमिका है, पर्यावरण वगैरह, जैसी बहुत-सी बातें हैं।

विज्ञान के सामाजिक सरोकार

समझना भी अपने तरीके से ज़्यादा मतलब रखता है और अगर वो अपनी ज़िंदगी से जो उदाहरण निकले हों, उसके साथ जुड़ा हो तो विज्ञान भी रहन-सहन के साथ ताल्लुक रखता है। कोई बच्चा आकर कहे कि घर में एक शंख पड़ा था, कान में लगाया शांय-शांय की आवाज़ आती है शंख से। किस चीज़ की आवाज़ है? समुद्र की आवाज़ क्यों सुनाई देती है शंख में से? कान में हाथ लगाने पर भी ऐसा सुनाई देता है, ऐसा क्यों होता है? यही सवाल मैंने कई शिक्षकों से पूछा, कोई इस सवाल के बारे में बात ही नहीं करता है। मुझे याद है बचपन से मुझे यह आवाज़ आती थी तो मैंने कहा कि मैं भगवान को सुन सकता हूं। केरल में वो कहते हैं कि ऐसी आवाज़ आती है जैसे हल्की-हल्की लहरें

रेत के ऊपर टूट रही हैं। यदि आप हिमाचल में हों, वो कहेंगे कि ऐसा लगता माना हवा चल रही है पेड़ों में और सां-सां आवाज़ आ रही है। बात करते हुए भी यदि नहीं मिलाएंगे तो कैसे पता चलेगा कि ज़िन्दगी के साथ विज्ञान कहां मिल रहा है। तरह-तरह की और चीज़ें हैं जो हमारे रहन-सहन, खाने-पीने, जीव-वनस्पति और बहुत-सी और चीज़ों से जुड़ी हुई हैं। अगर उनको लेकर बात नहीं करेंगे तो कैसे होगा?

किस्सा मरुता का

एक आपने कहानी सुनी होगी मरुता के बारे में या जुगाड़ के बारे में। उसके ज़रिए मैं यह बताना चाहता हूं कि हमारी मनोवृत्ति क्या है? एक किसान था जो फौज में रहा था। पंजाब में रहता था और उसके पास पानी का पंप था। उसका डीज़ल पंप तो रोज़ दो-चार घंटे चलता था। तो उसने कहा कि चार घंटे चलता है, उसके बाद खाली बैठा रहता है। अच्छा पंप है, खराब होता है तो मैं ठीक कर लेता हूं, मेरा बेटा भी ठीक कर लेता है। ऐसे ही पड़ा रहता है खाली-खाली। इससे तो अच्छी तरह से काम लेना चाहिए। तो उसने लकड़ी की गाड़ी बनाई, उसके नीचे पहिए लगाए, स्प्रिंग लगाए, जीप के पुराने पार्ट्स लगाए, क्लच लगाया और रेडिएटर लगाकर उसने एक गाड़ी बना ली। फिर उसे डीज़ल पंप की मोटर के साथ लगा दिया तो गाड़ी बन गई।

गाड़ी चलने लग गई। 20-40 किलोमीटर की रफ्तार से तो जा ही सकती थी। थोड़े दिनों में गांव की सड़कों पर इसी गाड़ी से टैक्सी भी चलने लगी। किसी और ने देखा और उससे पूछा, "आपकी गाड़ी का नाम क्या है?" उसने कहा, "रोहतक।" किसी और ने बनाई और नाम रख लिया 'जुगाड़'। क्या जुगाड़ बनाया है! तो इस तरह से पंजाब में फैलने लगी, हरियाणा और राजस्थान में फैलने लगी। किसी ने विज्ञापन नहीं किया इसका। लोगों ने खुद किया। कहते हैं न, कम्यूनिकेशन कैसे होता है। मैं कम्यूनिकेशन के इंस्टीट्यूशन गया। मैंने कहा, "यार, तुम कम्यूनिकेशन स्टडी करते रहते हो, इसको (जुगाड़ को) स्टडी करो। यह इतनी जल्दी फैल कैसे गया।" मुझे नहीं लगता कि किसी

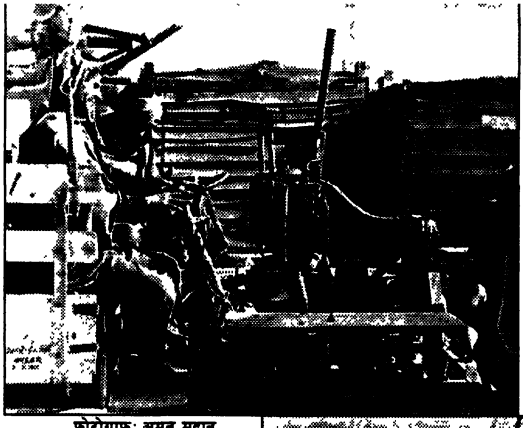

पंजाब, हरियाणा, राजस्थान में चलने वाले जुगाड़ या मरुता का इंजन वाला हिस्सा जिसमें डीज़ल पंप, रेडिएटर आदि पुर्ज़े दिखाई दे रहे हैं।

फोटोग्राफः अमन मदान

सामने से देखने पर मरुता कुछ इस तरह दिखाई देता है। इसका इस्तेमाल सवारी ढोने से लेकर सामान ढोने तक किया जाता है।

ने मेरी बात को गंभीरता से लिया हो और इसका अध्ययन किया हो।

फिर मैं आई. आई. टी. में गया, इंजीनियरिंग कॉलेज में गया। फिर मैंने कहा कि जुगाड़ बनाने का एक-एक प्रोजेक्ट हर बच्चे को करने दो, उसमें इतना कुछ सीखेंगे। मैकेनिक्स में इतना कुछ सीखेंगे और उसके बाद सोचो कि इसको कैसे आगे बढ़ाया जा सकता है? क्या इंप्रूव किया जा सकता है। उसमें कुल मिलाकर 20-30 हज़ार रुपए लगे थे। अब जगह-जगह फैल रहा है। एक उद्योगपति के पास गया। मैंने बताया कि ऐसा हुआ है। उन्होंने

कहा, "दे हेव एक्चुली डन इट! नो, नो, नो। इट शूड नेवर बी अलाउड ऑन द रोड।" सड़क पर नहीं आना चाहिए, इसको लायसेंस नहीं मिलना चाहिए। हुआ यही कि आर. टी. ओ. ने कहा कि यह गैर कानूनी है। कइयों के मरुता जब्त कर लिए, पर अभी भी चल रहे हैं गांवों में। दरअसल होना यह चाहिए था कि उस पर और शोध होता, अनुमति दिलवाने की कोशिश होती। खेत में चलता हुआ पंप थोड़ा प्रदूषण फैलाता है तो मरूता में भी थोड़ा प्रदूषण करने दो। यदि ट्रेक्टर ट्राली इस्तेमाल करने देते हो और लोग देखते हैं कि उनके लिए यह ज़्यादा संभव है तो वे इसे इस्तेमाल क्यों नहीं करें?

अन्य देशों में ये चीज़ नहीं है। चीन में या किसी और देश में किसी ने यह किया होता तो हम उनसे कहते कि उनसे टेक्नॉलॉजी ले लो। जब तक लोगों की ज़िंदगी के साथ, उनके नवाचार के साथ, उनके सोचने के साथ, उनकी सुविधा के साथ, पढ़ाई का जुड़ाव नहीं होगा, तो वो ऐसे ही अलग बनी रहेगी मानो कि एक स्टील के बक्से में आपने नॉलेज रख दिया, चाहे उम्दा-से-उम्दा नॉलेज लेकर आ जाएं। दुनिया भर से, लोहे के बक्से लाकर एक बक्सा यहां रक्खा, एक होशंगाबाद में रखा, एक भोपाल में रखा, एक दिल्ली में रखा। एक आई. आई. टी. बनाया, एक ये बनाया, वो बनाया। जब तक इन बक्सों में छेद नहीं होंगे, जब तक समाज के साथ नहीं जुड़ेंगे, तो उपजाऊ पढ़ाई नहीं होगी, देश आगे नहीं बढ़ेगा। अगर होशंगाबाद विज्ञान का यह स्तर रहा कि ज़मीन के साथ जुड़कर, लोगों की सोच के साथ जुड़कर, समझ के साथ जुड़कर पढ़ाई होगी तो इसका असर ज़रूर पड़ेगा।

कुछ मत करिए जिसमें आपको आनंद नहीं आता, और मैं सोचता हूं कि इस प्रकार समझने से - समझाने से, पढ़ने वाले को - पढ़ाने वाले को, जो आनंद मिलता है वो इसे आगे बढ़ाने का, इसे करते रहने का सबसे बड़ा कारण है। अगर आनंद नहीं आ रहा है तो सोचिए क्यों नहीं आ रहा है, कुछ गड़बड़ी ज़रूर होगी। रटने से आनंद नहीं आता, अगर समझने से आनंद आता है तो आनंद ढूंढते चलिए। इसमें तो आप काफी आगे बढ़ेंगे। तो कहां तक पहुंच गए आप, बहुत कुछ पहुंचे हैं – पर मानता हूं बहुत कुछ करने को अभी है।

अब मैं आपके सामने भी एक प्रश्न रखता हूं, जो कहते हैं न अपने कल्चर के साथ पढ़ाई का क्या ताल्लुक। चूडियां पहनी हैं कभी? रंगीन कांच की। तो देखिए कि इस प्रकार का सवाल आपको किसी बाहर की किताब में नहीं मिलेगा। मेरी बहन की खेलते-खेलते, शरारत करते हुए तीन चूडियां टूट गईं – एक

लाल, एक पीली और एक नीली। मैंने मां से इमामदस्ता लेकर उन्हें कूटकर चूरा बनाया क्योंकि मैं मांजा बनाने के लिए लुगदी बना रहा था। पर एक चीज़ मैंने देखी कि जब मैंने पीली चूड़ी का चूरा किया तो वह सफेद था, नीली का किया सफेद था, लाल का किया वो भी सफेद था, अब ये बताइए कि ऐसा क्यों? अब यह प्रश्न आपके जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। ऐसे तरह-तरह के प्रश्न होते हैं। तो बताओ क्यों?

ये प्रश्न तो हमारे लोगों की आम ज़िंदगी के साथ जुड़े हुए हैं तो क्या आप कहेंगे ये विज्ञान के प्रश्न नहीं हैं? अब मुश्किल यह है कि शिक्षा में कई ऐसे भी सवाल होते हैं जिनमें पूरा ठीक नहीं, पूरा गलत नहीं। आपने कहा कि उसके जो छोटे-छोटे कण होते हैं उससे सब चीज़ें स्केटर होती हैं बिखर जाती हैं। यदि ऐसा ही हुआ तो रंग कहां गया? आप एक प्रयोग कीजिए, कोई लाल, नीला शीशा लेकर। उसमें से अगर लाइट गुज़रती है और हम अगर दूसरी ओर से देखें तो शीशा लाल दिखता है; और अगर उसके ऊपर सूर्य की रोशनी डालें तो जो प्रतिबिंब होता है वो तो वही सफेद का सफेद होता है न? कभी कोशिश कीजिएगा – सामने जा रही मोटरगाड़ियों पर तरह-तरह के रंगीन कांच लगे होते हैं। जब कभी उन पर सूरज की चमक पड़ती है, सूरज तो हमेशा चमकता सफेद दिखता है, चाहे कांच किसी भी रंग का हो। बात यह है कि जब किसी चीज़ पर लाइट पड़ती है तो उसका कुछ हिस्सा बाहर सतह से ही परावर्तित हो जाता है, और वह उसी रंग का होता है जो वस्तु का रंग है क्योंकि वह कांच के अंदर घुसा ही नहीं है।

जब आप किसी शीशे को पाउडर करते हैं, चूड़ी का बेहद महीन पाउडर किया तो उसका अन्दर तो रहता ही नहीं, केवल सतह ही सतह बच जाती है। और सतह से जो बिखराव या परावर्तन होता है वह उसी रंग का होता है जिस रंग की लाइट पड़ रही है। अगर वह सफेद है तो चूड़ी का रंग कोई भी रहा हो – पीला, लाल या नीला, पाउडर सफेद रंग का ही दिखेगा। ये कोई नई बात नहीं है, पर किसी ने नोटिस किया, सवाल किया, अनुभव किया?

यह सवाल आपके स्कूल में एक्सपेरीमेंट में होना चाहिए। इस प्रकार का कोई सवाल आए तो कोई नया प्रयोग करें; ये थोड़े ही है कि जो पुस्तक में लिखा है वही करना है रोज़-रोज़। आपके पाठ्यक्रम में आए न आए, आदत बना लीजिए इस तरह के एक्सपेरीमेंट करने की; केवल स्कूल में ही नहीं बाहर भी, तब नई-नई चीज़ें सामने आएंगी। इस तरह की

पचासों चीज़ें हो सकती हैं। बहुत सारे तरह-तरह के रंगों वाले साबुन के झाग बनाओ – साबुन लाल हो, हरा हो, परन्तु सब झाग सफेद बनेंगे, सब सफेद। यहां भी वही हुआ न कि सतह बहुत सारी बन गई, तो बाहर से ही परावर्तित होकर आ जाती है रोशनी। परन्तु साबुन की झाग से जो बुलबुले बनते हैं उनमें तो रंग दिखता है, तरह-तरह के रंग दिखते हैं। तो फिर वे कहां से आ जाते हैं? वे इंटरफेयरेंस कलर होते हैं, लाइट के इंटरफेयरेंस से बनते हैं। मोर के पंख में भी, इंटरफेयरेंस के रंग होते हैं; जो चमकते-चमकते रंग दिखते हैं, वे भी इंटरफेयरेंस से बनते हैं। उन पंखों में कोई पिगमेंट यानी रंजक वाला रंग नहीं होता।

तो इस प्रकार से आसपास की ज़िंदगी से उठे हुए सवाल, जो वैज्ञानिक सवाल हैं, उनको साथ में लाने की आवश्यकता है। कल्चर और विज्ञान दोनों अलग नहीं होना चाहिए, दोनों में गहराई वही रहे। अगर मुश्किलें दिखती हैं तो मुश्किलें हर कहीं रहती हैं। करने का जो रास्ता चलना है, वही सबसे अच्छी बात है। रास्ता चलते-चलते आनंद आए तो आपको इधर-उधर सुन्दर फूल दिखेंगे। एक भी ऐसी, जानने लायक बात दिखी तो आपको लगेगा काम सफल हुआ।

प्रोफेसर यशपाल: वरिष्ठ अंतरिक्ष वैज्ञानिक और विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में सक्रिय। स्कूली शिक्षा में 'बस्ते के बोझ' को कम करने के लिए सरकार को सुझाव देने के लिए बनी 'यशपाल समिति' के अध्यक्ष थे। पूर्व में कई संस्थाओं से संबद्ध रहे हैं। टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च बंबई में वैज्ञानिक थे। इंडियन स्पेस रिसर्च ऑर्गेनाइज़ेशन के स्पेस एप्लीकेशन प्रोग्राम के निदेशक। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पूर्व चेयरमैन रह चुके हैं।

प्रोफेसर यशपाल ने 4, अगस्त 2000 को होशंगाबाद में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबंधित एक शिक्षक सम्मेलन के दौरान विज्ञान के समाज से जुड़ाव और सामाजिक संदर्भों में नवाचारों की भूमिका पर अपने विचार व्यक्त किए थे। यह लेख उनके विचारों का संपादित रूप है।